चाहमान शासकों की धार्मिक सहिष्णुता

*डॉ. अंजु शर्मा

शोध सारांश

भारतीय वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में धर्म की सर्वदा सर्वाधिक महत्ता रही है। 700 से 1200 ई. का काल भारतीय इतिहास में राजपूत काल के नाम से जाना जाता है क्योंकि राजनीतिक क्षितिज पर उभरने वाले नवीन राजवंश अपने आपको राजपूत नाम से संबोधित करते हैं। इन राजपूत राजवंशों में प्रतिहार, गुहिल, चाहमान् तथा परमार विशेष उल्लेखनीय है। राजस्थान के बड़े–बड़े भौगोलिक प्रदेश समय–समय पर इनके नियंत्रण में रहे जिसके फलस्वरूप उन प्रदेशों का राजनीतिक इतिहास तो प्रभावित हुआ ही, उनका सांस्कृतिक जीवन भी प्रभावित हुआ। राजपूतकालीन अभिलेखों एवं अन्य प्रमाणों के अनुशीलन से विदित होता है कि उस युग में अनेक धर्म प्रचलित थे तथा हिन्दू धर्म के साथ–साथ बौद्ध एवं जैन मत का भी प्रचार–प्रसार था। राजा से लेकर जनसाधारण तक सभी लोग अपने विश्वास एवं रूचि के अनुकूल विभिन्न देवी–देवताओं की उपासना करते थे। प्रस्तुत आलेख में चाहमान शासकों की धार्मिक आस्था को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

दसवीं शती के उत्तरार्ध में प्रतिहार साम्राज्य के विघटन प्रारंभ होने के पूर्व चाहमन वंश की अनेक शाखाएँ उनकी अधीनता स्वीकार करती थी। उनमें भृगुकच्छ, प्रतापगढ़, नाडौल एवं धवलपुरी आदि शाखाओं का तो सामन्त रूप में अंत हो गया किंतु शांकम्भरी की चाहमान शाखा अपना सामन्ती रूप छोड़कर एक साम्राज्य सत्ता के रूप में विकसित होने में सफल हुई। चाहमान सम्राटों के संरक्षण में शाकम्भरी, हर्षगिरि, पुष्कर, बघेरा आदि स्थान धर्म, संस्कृति व कला के प्रमुख केन्द्रों के रूप में सुविदित हैं।

विभिन्न चाहमान शासकों ने संहतिवादी भावना का प्रमाण दिया है। तीर्थस्थानों पर प्रायः सभी प्रमुख देवी–देवताओं के मंदिर होते थे। यद्यपि पुष्कर ब्रह्मा की तपोभूमि माना जाता था तथापि वहाँ विष्णु और शिव के मंदिर भी थे। चाहमान शासकों ने पुष्कर झील के तट पर अनेक शिव–मंदिरों का निर्माण करवाया था। चाहमान शासकों ने अपने अभिलेखों में अपनी व्यक्तिगत निष्ठा जिस धर्म के प्रति दर्शायी है, वह हिन्दू–धर्म था। उसमें भी विशेष रूप से वे शिव के भक्त दिखाई देते हैं। हर्ष अभिलेख से ज्ञात होता है कि गूवक प्रथम ने चाहमान कुल देवता श्री हर्षदेव (हर्षनाथ) के मंदिर का निर्माण करवाया था। वाक्पति राज प्रथम और उसके पुत्र सिंहराज द्वारा पुष्कर में एक शिव मंदिर के निर्माण का उल्लेख पृथ्वीराज विजय में मिलता है। अलवर से प्राप्त वि.सं. 1239 (1182 ई.) के किलच्चदेवी अभिलेख द्वारा शिव के मंदिर का निर्माण करवाए जाने का उल्लेख है। आल्हण द्वारा नाडौल में शिव मंदिर निर्मित किए जाने का उल्लेख है। जालौर की चाहमान शाखा के शासक कीर्तिपाल की पुत्री रूदलदेवी तथा उदयसिंह ने जालौर में शैव मंदिरों का निर्माण करवाया था। यद्यपि वे शैवमतावलम्बी थे फिर भी उनमें परम्परागत धार्मिक सहिष्णुता के दृष्टिकोण का अभाव नहीं था। यही कारण था कि चाहमान शासकों ने जैन एवं वैष्णव धर्म को भी प्रश्रय प्रदान किया। उदाहरणार्थ नाडौल के चाहमान शासक सहजपाल के वि.सं. 1202 के मंडोर अभिलेख का प्रारम्भ 'ओम नमो नारायणाम्' मंत्र से हुआ है। इसी प्रकार कीर्तिपाल के वि.सं. 1218 के नाडौल ताम्रपत्र के आरंभ में ब्रह्मा एवं शिव की स्तुति के साथ–साथ श्रीधर (विष्णु) की भी स्तुति की गई है। अजमेर के अढ़ाई दिन के झोंपड़े से प्राप्त बारहवीं शताब्दी के एक अभिलेख में जहाँ 'नारायण' की स्तुति मिलती है, हीं सूर्यदेव को विष्णु का दायाँ नेत्र भी कहा गया है। चाहमान इतिहास पर प्रकाश डालने वाले 'पृथ्वीराज विजय' एवं 'पृथ्वीराज रासो' नामक दोनों ही ग्रंथों में शिव एवं विष्णु की गणना प्रमुख देवां में की गई है। वि.सं. 1030 के हर्षनाथ अभिलेख से विदित होता है कि हर्षनाथ का शिव मंदिर चाहमान शासकों के अतिरिक्त तत्कालीन जन आस्था का एक बड़ा केन्द्र था। 'पृथ्वीराज विजय' से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज प्रथम ने पुष्कर तीर्थ मे ब्राह्मणों को लूटने वाले सात सौ चालुक्यों का वध

किया। ये चालुक्य सैनिक भी शैव ही प्रतीत होते है क्योंकि इन सैनिकों के स्वामी कर्णदेव (1064–1094 ई.) एवं जयसिंह सिद्धराज (1094–1143 ई.) भी शैव ही थे। वास्तव में यह एक शुद्ध सैन्य अभियान था, गुजरात में बसे हुए जैनों से इसका कोई संबंध नहीं था। चूंकि समाज में ब्राह्मणों को हिन्दू संस्कृति का प्रतीक माना जाता था। अतः स्वधर्मी होते हुए भी पृथ्वीराज प्रथम ने चालुक्य सैनिकों को भी नहीं बख्शा। इस वंश का शासन अर्णोराज यद्यपि शैवधर्मानुयायी था तथापि उसने पुष्कर में वराह का मंदिर बनवाया था। नाडोल में त्रिपुरूष (ब्रह्मा) का प्रसिद्ध मंदिर था। चाहमान अभिलेखों में राजाओं द्वारा इस मंदिर को दिए गए दानों का उल्लेख हुआ है।

चाहमान शासकों के अभिलेखों से उनके द्वारा सूर्य पूजा को प्रश्रय देने की भी जानकारी मिलती है। चाहमान शासक सिंहराज के काल में स्थानीय प्रशासक दुर्गराज ने सूर्य पूजा हेतु दान की व्यवस्था की थी। अल्हण और कीर्तिपाल शैव धर्मानुयायी होते हुए भी सूर्य देव की आराधना करते थे। कीर्तिपाल के वि.स. 1218 के एक अभिलेख के अनुसार उससे तमतोम विनाशक और सर्वपाप विमोचक भगवान रश्मिमाली की आराधना के पश्चात दान दिया था। अल्हण के नाडोल से प्राप्त वि.सं. 1218 के एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने सूर्य पूजा की थी। चाहमनों के शासनकाल में 'शाक्त धर्म' की भी जानकारी मिलती है। शाकम्भरी के चाहमानों की कुलदेवी आशापुरी थी जो कि चाहमान वंश के विस्तार के साथ नाडोल भगुकच्छ में 'आशापुरा' नाम से प्रसिद्ध हुई। सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज तृतीय ने अपने नाम के सिक्कों पर 'आशावरी' देवी का नाम उत्कीर्ण करवाया था जिससे देवी की महत्ता पता चलती है। दुर्लभराज के किणसरिया अभिलेख में एक शाक्त मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है।'पृथ्वीराज विजय' से प्रमाणित होता है कि विग्रहराज द्वितीय ने भडोंच में आशापुरी देवी का मंदिर निर्मित किया था।

बारहवीं शती में रचित जैन ग्रंथों के आधार पर डॉ. दशरथ शर्मा ने यह सूचना दी है कि पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भौर के जैन मंदिरों के ऊपर स्वर्ण कलश स्थापित किए थे। इसी प्रकार अजयराज से लेकर पृथ्वीराज तृतीय तक केवल अर्णोराज को छोड़कर सभी राजा शैव थे किंतु अपने क्षेत्र में निवास करने वाले जैनों के प्रति उनका व्यवहार सहिष्णुतापूर्ण बना रहा। 'प्रभावकचरित' एवं दाश्रयकाव्य' से ज्ञात होता है कि अर्णोराज ने वैष्णव होते हुए भी अपनी पुत्री जल्हण का विवाह जैनधर्मानुयायी कुमारपाल से किया। बिजौलिया अभिलेख वि.सं. 1226 के अनुसार पृथ्वीराज द्वितीय ने बिजौलिया में पार्श्वनाथ मंदिर की व्यवस्था हेतु मोराझरी गाँव दान दिया था। उनके पिता सोमेश्वर ने भी उक्त मंदिर के लिए खेना ग्राम दान दिया था। अजयराज के पुत्र अर्णोराज ने धर्मघोष सूरि को अपनी राजसभा में सम्मान दिया और जिनदत्तसूरी को अजमेर में जैन मंदिर का निर्माण करवाने के लिए अनुमति प्रदान की। रविप्रभाचार्य ने अपने ग्रंथ 'धर्मघोषसूरि स्तुति' में विग्रहराज चतुर्थ के बारे में कहा है कि उसने अजमेर के एक जैन मंदिर में एक ध्वज स्तंभ लगाया जिसमें मालवा के किसी राजा ने उसकी मदद की थी। सोमेश्वर के बिजौलिया शिलालेख का लेखक जैन विद्वान था। सोमेश्वर स्वयं अन्हिलवाड़ा के राजदरबार में पला था जो जयसिंह सिद्धराज एवं कुमारपाल के समय प्रसिद्ध जैन विद्वानों का गढ़ था। पृथ्वीराज तृतीय के राजदरबार में विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य होने वाले शास्त्रार्थों का उल्लेख 'पृथ्वीराज विजय' में मिलता है। नाडौल शाखा के चाहमानों ने भी जैन धर्म के प्रति उदार नीति का अनुसरण किया जिससे मारवाड़ संभाग में जैन धर्म की लोकप्रियता बढ़ी। जालौर के वि.सं. 1239 के अभिलेखानुसार श्रीमाल के श्रेष्ठि यशोवीर ने एक मण्डप का निर्माण करवाया था। अर्थात् जालौर शाखा के चाहमानों के शासनकाल में भी जैन धर्म की प्रगति हुई। उपरोक्त सभी उद्धरणों से चाहमान शासकों की धार्मिक आस्था एवं धार्मिक सहिष्णुता प्रमाणित होती है।

चाहमान एवं मुसलमान

चाहमान सत्ता के सम्मुख मुस्लिम आक्रमणों की समस्या विशेष रूप से रही थी क्योंकि चाहमानों के शाकम्भरी एवं अजमेर वाले क्षेत्र लाहौर के यमीनी तुर्कों वाले क्षेत्रों के निकट थे तथा जब विग्रहराज चतुर्थ ने दिल्ली को विजय कर लिया तो चाहमान राज्य की सीमाएँ लाहौर के तुर्क राज्य को छूने लगी अतः तुर्कों के आक्रमणों से देश की रक्षा का दायित्व सीधे सीधे चाहमानों के कंधों पर आ गया। राजशेखर के प्रबन्धकोष, जयानक के पृथ्वीराज विजय, सोमदेव के ललित विग्रह राज नाटक, नयचन्द्र के हम्मीर महाकाव्य तथा चन्दवरदायी के पृथ्वीराज रासों में चाहमनों के मुस्लिम शासकों के साथ संघर्ष का पर्याप्त वर्णन मिलता है।

इन ग्रंथों के तुर्क आक्रमणों के विवरणों को यदि अभिलेखीय साक्ष्यों से तुलना करके देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये आक्रमण केवल राजनीतिक अथवा सैनिक चुनौती मात्र नहीं थे अपितु ये सांस्कृतिक चुनौती के रूप

में देखे गये। दिल्ली शिवालिक अभिलेख में यह उल्लेख है कि विग्रहराज चतुर्थ ने म्लेच्छों को बार–बार पराजित करके आर्यावर्त्त देश को सचमुच आर्यों के निवास के लिए उपयुक्त बना दिया। स्पष्ट है चाहमान शासकों ने मुस्लिम आक्रमणों को आर्य धर्म और संस्कृति के विरूद्ध हिन्दुत्व की जड़ पर प्रहार करने वाली एक समस्या के रूप में देखा। उन्हें 'म्लेच्छ' एवं 'राक्षस' कहा गया जिसका सबसे बड़ा निदर्शन जयानक भट्ट ने 'पृथ्वीराज विजय' में किया है। जयानक मुहम्मद गौरी के आक्रमण की समस्या का चित्र खींचते हुए पृथ्वीराज को रघुकुल में उत्पन्न विष्णु के अवतार राम के रूप में उपस्थित करते हैं तथा मुहम्मद गौरी को म्लेच्छ अथवा राक्षस रावण के रूप में उपस्थित करते हैं। इसी प्रकार सोमदेव ने अपने नाटक 'ललित विग्रहराज' में तुर्क आक्रांताओं को 'म्लेच्छ' शब्द से अभिहित किया है। यशोधर्मा का मंदसौर अभिलेख मिहिरकुल को अथवा अन्य हूणों को म्लेच्छ कहता है। अतः जब जयानक मुहम्मद गौरी की तुलना रावण से करते हैं अथवा पृथ्वीराज को राम के रूप में देखते हैं तो यह आर्य संस्कृति के विरूद्ध तुर्क संस्कृति को उस विभिषिका, राक्षस अथवा कलियुग के रूप में देखते है जिसके अन्त के लिए विष्णु के अवतार के रूप में किसी अवतारी पुरूष की आवश्यकता थी। संपूर्ण पृथ्वीराज विजय की कल्पना पुष्कर तीर्थ की ब्राह्मण संस्कृति को नष्ट करने वाले राक्षस अथवा म्लेच्छों के दमन के लिए, शिव द्वारा विष्णु को उन्हें नष्ट करने के लिए विष्णु को अवतरित होने की आज्ञा के रूपक स्वरूप ही हुई है। यहाँ गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख से तुलना की जा सकती है, जिसमें कहा गया है कि गोविन्दचन्द्र विष्णु के रूप में शिव की आज्ञा से अवतरित हुआ था।

इस प्रकार स्पष्ट है राजपूत काल में विशेष रूप से प्रतिहारों से लेकर चाहमानों तक मुस्लिम आक्रमणों की समस्या देश के राजपूत नरेशों के सामने एक सांस्कृतिक समस्या थी। मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा इस देश में धार्मिक स्थलों का बड़े पैमाने पर भंजन हुआ, लूटपाट, हत्या, बलात्कार एवं धर्म परिवर्तन हुआ, ये सब कुछ हिन्दू समाज और धर्म को झकझोरने वाली विपत्ति थी। अतः चाहमान शासकों अथवा अन्य राजपूत वंशों ने मुसलमानों को म्लेच्छ अथवा राक्षस के रूप में देखा तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। राजनीति एवं धर्मशास्त्र के सारे सिद्धान्त उन्हें देश में स्थापित समाज और संस्कृति के रक्षक के रूप में देखते थे और इस समाज और संस्कृति में शैव, वैष्णव, सौर, जैन एवं बौद्ध सभी शामिल थे। आक्रांताओं की चुनौती सभी के सामने समान रूप से थी किंतु चाहमान अथवा अन्य राजपूत वंशों ने मुसलमानों का मुसलमान होने के नाते कभी संहार किया या उन पर कोई अत्याचार किया इसका कोई भी उदाहरण नहीं मिलता।

***अस्सिटेंट प्रोफेसर**
इतिहास विभागाध्यक्ष
एस.एस.जैन सुबोध गर्ल्स कॉलेज
जयपुर (राज.)

संदर्भ सूची

1. त्रिगुणायत एस.के. ''प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म – एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण'', भारतीय विद्या मंदिर, सिम्पलेक्स इंफ्रास्ट्रकचर्स लिमिटेड, कलकत्ता 2009, पृ.120.
2. पृथ्वीराज विजय, 1. 35–40, 5. 36–44
3. एपिग्राफिया इण्डिका, वॉल्यूम 2, पृ. 121 एवं 126
4. पृथ्वीराज विजय, 5.43
5. मिश्र रतनलाल, इन्सक्रिपशंस ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम 3, पृ. 186. हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर, नई दिल्ली, 2006.
6. एपिग्राफीया इण्डिका, वॉल्यूम 9, पृ.77.
7. व्यास डॉ. श्यामप्रसाद, 'राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ.67, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1986.
8. त्रिगुनायत एस.के. ''वैचारिकी'', भाग 21, अंक 4, 2006, पृ. 59–60.